



2026:AHC-LKO:3315

मामले अंतर्गत अनुच्छेद 227 संख्या- 24/2026

मैसर्स टंडन एंड कंपनी एवं अन्य — याचिकाकर्ता

बनाम

ऋण वसूली न्यायाधिकरण एवं अन्य — प्रतिवादी

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता: गौतम सडाना, देवेश श्रीवास्तव

प्रतिवादी के अधिवक्ता: मनु दीक्षित

न्यायालय संख्या- 17

(माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी द्वारा प्रदत्त)

- याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री देवेश श्रीवास्तव एवं श्री गौतम सडाना, तथा विपक्षी संख्या 2 - एच.डी.एफ.सी. बैंक लिमिटेड के विद्वान अधिवक्ता श्री मनु दीक्षित को सुना गया एवं अभिलेखों का परिशीलन किया गया।
- याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने कथन किया है कि उन्होंने त्रुटिवश ऋण वसूली न्यायाधिकरण को याचिका में विपक्षी संख्या 1 के रूप में पक्षकार बना दिया है। उनके मौखिक अनुरोध पर, उन्हें याचिका के ज्ञापन में प्रतिवादियों की सूची से न्यायाधिकरण का नाम तत्काल हटाने की अनुमति दी जाती है।
- भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत प्रस्तुत इस याचिका के माध्यम से याचिकाकर्ताओं ने ऋण वसूली न्यायाधिकरण (जिसे इसके पश्चात 'डीआरटी' कहा गया है) द्वारा प्रतिभूतिकरण आवेदन संख्या 936/2024 में पारित आदेश दिनांक 10.11.2025 की वैधता को चुनौती दी है, जिसके द्वारा डीआरटी ने जिला अधिकारी, लखनऊ द्वारा वाद संख्या 1414/2025 में वित्तीय आस्तियों का प्रतिभूतिकरण और पुनर्गठन तथा प्रतिभूति हित का प्रवर्तन अधिनियम, 2002 (जिसे इसके पश्चात 'सरफेसी अधिनियम' कहा गया है) की धारा 14 के अंतर्गत पारित आदेश दिनांक 28.06.2025 की अवैधता के संबंध में याचिकाकर्ता के तर्क को अस्वीकार कर

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

दिया है। उक्त आदेश के माध्यम से पूर्व आदेश दिनांक 08.05.2025 में कब्जे के नोटिस की तिथि के संबंध में हुई एक लेखन संबंधी त्रुटि को सुधारा गया था।

4. विपक्षी संख्या 2 के विद्वान अधिवक्ता ने एक प्रारंभिक आपत्ति उठाई है कि ऋण वसूली न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश को चुनौती देने वाली भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अंतर्गत दायर यह याचिका, सरफेसी अधिनियम की धारा 18 के तहत अपील के वैधानिक उपचार की उपलब्धता के दृष्टिगत पोषणीय नहीं है। विपक्षी बैंक के विद्वान अधिवक्ता ने माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा 'वरिमदुगु ओबी रेड्डी बनाम बी. श्रीनिवासुलु एवं अन्य: (2023) 2 एससीसी 168', 'पीएचआर इन्वेंट एजुकेशनल सोसाइटी बनाम यूको बैंक एवं अन्य: (2024) 6 एससीसी 579' तथा 'बालकृष्ण रामा तरले बनाम फीनिक्स एआरसी (पी) लिमिटेड: (2023) 1 एससीसी 662' के मामलों में दिए गए निर्णयों पर भरोसा जताया है।

5. इसके विपरीत, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने 'एस. एन. मुखर्जी बनाम भारत संघ: (1990) 4 एससीसी 594' तथा 'मैसर्स क्रांति एसोसिएट्स प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम श्री मसूद अहमद खान एवं अन्य: (2010) 9 एससीसी 496' के मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णयों पर भरोसा जताया है।

6. 'वरिमदुगु ओबी रेड्डी बनाम बी. श्रीनिवासुलु: (2023) 2 एससीसी 168' के मामले में, ऋण वसूली न्यायाधिकरण द्वारा प्रतिभूतिकरण आवेदन को खारिज कर दिया गया था, और उस खारिज किए जाने वाले आदेश को चुनौती नहीं दी गई, जिससे वह अंतिम हो गया। बंधक रखी गई संपत्ति का कब्जा लेने के बाद, बैंक ने ऋणधारकों को बकाया राशि चुकाने के लिए नोटिस जारी किया और उसके पश्चात 25.02.2015 को ई-नीलामी बिक्री नोटिस जारी किया, जिसमें निर्धारित संपत्ति की नीलामी की तिथि 28.03.2015 तय की गई थी। ऋणधारकों ने ई-नीलामी बिक्री नोटिस को ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष चुनौती दी। ऋण वसूली न्यायाधिकरण ने 26.03.2015 को एक अंतरिम आदेश पारित किया, जिसमें बैंक को प्रतिभूत संपत्ति की नीलामी-बिक्री के साथ आगे बढ़ने का निर्देश दिया गया, साथ ही यह निर्देश भी दिया गया कि यदि ऋणधारक उक्त आदेश की तिथि से 15 दिनों के भीतर अर्थात् 09.04.2015 तक 6 लाख रुपये जमा कर देते हैं, तो बिक्री प्रमाण पत्र जारी न किया जाए। यह स्पष्ट किया गया था कि यदि प्रतिवादी ऋणधारक उक्त राशि जमा करने में विफल रहते हैं, तो प्रतिवादी बैंक उच्चतम बोलीदाता के पक्ष में बिक्री प्रमाण पत्र जारी करने के लिए स्वतंत्र होगा। ऋणधारक 09.04.2015 तक 6 लाख रुपये जमा करने में विफल रहे और उन्होंने उसी दिन (09.04.2015) राशि जमा



करने के लिए 10.04.2015 से अगले 15 दिनों के समय विस्तार की मांग करते हुए एक आवेदन दायर किया। न्यायाधिकरण ने 17.04.2015 को आदेश पारित कर 6 लाख रुपये जमा करने के लिए 15 दिनों का अतिरिक्त समय प्रदान किया और बैंक तथा ऋणधारकों को यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया। चूंकि न्यायाधिकरण के समक्ष विवाद चल रहा था और ऋणधारक 10.04.2015 तक 6 लाख रुपये जमा करने के अंतरिम आदेश दिनांक 26.03.2015 का पालन करने में विफल रहे थे, बैंक ने न्यायाधिकरण द्वारा दी गई स्वतंत्रता के अनुसार नीलामी-बिक्री की प्रक्रिया आगे बढ़ाई। नीलामी खरीदार ने बयाना राशि के रूप में 5,54,000 रुपये जमा किए थे और उच्चतम बोलीदाता घोषित होने के बाद उसने 25% राशि और जमा की। खरीदार ने शेष 75% राशि 15.04.2015 को जमा कर दी और उसके पक्ष में बिक्री प्रमाण पत्र जारी कर दिया गया। जब न्यायाधिकरण ने 17.04.2015 को ऋणधारकों को 6 लाख रुपये जमा करने के लिए 15 दिनों का समय विस्तार देने का आदेश पारित किया, तब तक नीलामी बिक्री को अंतिम रूप दिया जा चुका था और बिक्री प्रमाण पत्र पहले ही जारी किया जा चुका था।

7. ऋणधारकों ने ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष दो प्रारंभिक आपत्तियाँ उठाई थीं। पहली आपत्ति यह थी कि 25.02.2015 के ई-नीलामी बिक्री नोटिस में बंधक रखी गई संपत्ति के विवरण में त्रुटि थी; क्योंकि प्रतिभूत संपत्ति का पता "भवन संख्या 12-3-39, तीसरी क्रॉस, साई नगर, अनंतपुरमु" था, जबकि ई-नीलामी बिक्री नोटिस में इसे "12-3-39" के स्थान पर "12-3-393" अंकित किया गया था। ऋणधारकों के अनुसार, यह प्रतिवादी बैंक द्वारा की गई एक प्रत्यक्ष त्रुटि थी, जिसके कारण संपत्ति का वह मूल्य प्राप्त नहीं हो सका जो सामान्य व्यवसाय के दौरान प्राप्त होना चाहिए था। न्यायाधिकरण ने यह व्यवस्था दी कि दी गई परिस्थितियों और तथ्यों में, भवन संख्या के संदर्भ में हुई यह अनपेक्षित मानवीय लेखन त्रुटि, नीलामी हेतु रखी गई बंधक संपत्ति के संबंध में कोई अस्पष्टता उत्पन्न नहीं करती है। यह लेखन संबंधी त्रुटि महत्वहीन है और ई-नीलामी बिक्री की कार्यवाही को दूषित नहीं करती है।

8. दूसरी आपत्ति यह थी कि वर्ष 2002 के नियमों के नियम 9(4) के अनुसार, नीलामी खरीदार द्वारा नीलामी मूल्य 15 दिनों के भीतर जमा किया जाना था, जो अवधि 10.04.2015 को समाप्त हो गई थी, परंतु राशि 15.04.2015 को जमा की गई। यह नियम 9(4) का स्पष्ट उल्लंघन है, जिसके फलस्वरूप ई-नीलामी बिक्री नोटिस और उसके अनुसरण में की गई सभी आगामी कार्यवाहियाँ शून्य घोषित किए जाने योग्य हैं। ऋण वसूली न्यायाधिकरण ने पाया कि चूंकि ऋणधारक 17.04.2015 के आदेश द्वारा दी गई विस्तारित अवधि में भी 6 लाख रुपये जमा



करने में विफल रहे थे, इसलिए न्यायाधिकरण ने उन्हें 10.05.2015 तक का अतिरिक्त समय दिया था, परंतु तब तक नीलामी की कार्यवाही पूर्ण हो चुकी थी और बिक्री प्रमाण पत्र विधिवत पंजीकृत किया जा चुका था। ऋण वसूली न्यायाधिकरण ने 01.08.2019 के आदेश द्वारा आवेदन को निरस्त कर दिया। न्यायाधिकरण के इस आदेश को उच्च न्यायालय ने रद्द कर दिया था। उच्च न्यायालय के आदेश को उलटते हुए, माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया:

“36. वर्तमान मामले में, यद्यपि प्रतिवादी ऋणधारकों ने प्रारंभ में सरफेसी अधिनियम, 2002 की धारा 17 के तहत आवेदन कर ऋण वसूली न्यायाधिकरण का दरवाजा खटखटाया था, परंतु न्यायाधिकरण का आदेश वास्तव में अधिनियम की धारा 18 के तहत 'पूर्व-जमा' की शर्त के अनुपालन के अधीन अपील योग्य था। वैधानिक अपीलीय उपचार का उपयोग किए बिना ही, प्रतिवादी ऋणधारकों ने संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत रिट याचिका दायर कर उच्च न्यायालय का रुख किया। हम कानून के तहत उपलब्ध वैकल्पिक वैधानिक उपचार का उपयोग किए बिना, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका स्वीकार करने की ऐसी परिपाटी की निंदा करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह घुमावदार मार्ग 2002 के अधिनियम की धारा 18 के द्वितीय परंतुक में परिकल्पित 'पूर्व-जमा' की शर्त से बचने के लिए अपनाया गया है।”

9. पीएचआर इन्वेंट एजुकेशनल सोसाइटी बनाम यूको बैंक: (2024) 6 एससीसी 579 के मामले में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने 'वरिमदुगु ओबी रेड्डी बनाम बी. श्रीनिवासुलु (उपरोक्त) में प्रतिपादित विधि एवं कुछ अन्य निर्णयों का अनुसरण किया। उक्त निर्णय का प्रासंगिक अंश नीचे उद्धृत किया जा रहा है: -

“29. हाल ही में, 'सेलिर एलएलपी [सेलिर एलएलपी बनाम बाफना मोटर्स (मुंबई) (पी) लिमिटेड: (2024) 2 एससीसी 1]' के मामले में, इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों का सर्वेक्षण करने के बाद, न्यायालय ने इस प्रकार अवलोकन किया:

‘101. एक दशक से भी अधिक समय पहले, इस न्यायालय ने आरडीबीएफआई अधिनियम और सरफेसी अधिनियम के तहत वैधानिक उपचारों की उपलब्धता के बावजूद उच्च न्यायालयों द्वारा उन्हें नजरअंदाज करने और संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने के संबंध में अपनी बार-बार की घोषणाओं के बावजूद गंभीर चिंता व्यक्त की थी। 'सत्यवती टंडन

[यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया बनाम सत्यवती टंडन, (2010) 8 एससीसी 110]' के मामले में इस न्यायालय के निर्णय के बाद भी, ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालयों ने आरडीबीएफआई अधिनियम और सरफेसी अधिनियम के तहत वैधानिक उपचारों की अनदेखी करते हुए अनुच्छेद 226 के तहत अपने रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग जारी रखा है।'

30. इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि यह कानून की एक सुस्थापित विधिक स्थिति है कि ऐसे मामलों में, उच्च न्यायालय को संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिका स्वीकार नहीं करनी चाहिए, विशेषकर तब जब एक वैकल्पिक वैधानिक उपचार उपलब्ध हो।

34. हमारे विचार में, उच्च न्यायालय को इस बात पर विचार करना चाहिए था कि पुष्ट हो चुकी नीलामी-बिक्री में केवल तभी हस्तक्षेप किया जा सकता था जब कोई धोखाधड़ी या मिलीभगत हुई हो। वर्तमान मामला धोखाधड़ी या मिलीभगत का मामला नहीं था। उच्च न्यायालय के आदेश का प्रभाव उन मुद्दों को फिर से खोलना होगा जिन्होंने अंतिमता प्राप्त कर ली है।

37. इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि न्यायालय ने कुछ ऐसे अपवाद निर्धारित किए हैं जब वैकल्पिक उपचार की उपलब्धता के बावजूद संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिका स्वीकार की जा सकती है। उनमें से कुछ इस प्रकार हैं:

- (i) जहाँ वैधानिक प्राधिकारी ने संबंधित अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार कार्य न किया हो;
- (ii) जहाँ उसने न्यायिक प्रक्रिया के मूलभूत सिद्धांतों की अवहेलना में कार्य किया हो;
- (iii) जहाँ उसने उन प्रावधानों का सहारा लिया हो जो निरस्त किए जा चुके हैं; और
- (iv) जब कोई आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के पूर्ण उल्लंघन में पारित किया गया हो।

38. हालांकि, यह स्पष्ट किया गया है कि उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत याचिका स्वीकार नहीं करेगा यदि पीड़ित व्यक्ति के पास प्रभावी वैकल्पिक उपचार उपलब्ध है, या जिस कानून के तहत शिकायत की गई कार्रवाई की गई है, उस कानून में ही शिकायत निवारण का तंत्र मौजूद है।"

(विशेष बल दिया गया)

10. उपरोक्त निर्णय में स्पष्ट रूप से यह निर्धारित किया गया है कि यद्यपि उच्च न्यायालय को सामान्यतः तब याचिका स्वीकार नहीं करनी चाहिए जब याचिकाकर्ता के पास सरफेसी अधिनियम की धारा 18 के तहत अपील दायर करने का वैकल्पिक उपचार उपलब्ध हो, किंतु प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन की स्थिति में वैकल्पिक उपचार का यह अवरोध लागू नहीं होगा।

11. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि जिला मजिस्ट्रेट ने अपने पूर्व आदेश का पुनरावलोकन किया है, जबकि कानून उन्हें पुनरावलोकन की शक्ति प्रदान नहीं करता है, और इसलिए, जिला अधिकारी ने संबंधित अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार कार्य नहीं किया है। ऋण वसूली न्यायाधिकरण ने बिना कोई कारण बताए, जिला अधिकारी द्वारा पारित आक्षेपित आदेश पर रोक लगाने हेतु याचिकाकर्ता के अंतरिम राहत के आवेदन को खारिज कर दिया है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि बिना किसी कारण के पारित आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है।

12. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय की एक खंडपीठ द्वारा 'कोटक महिंद्रा बैंक लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: 2016 एससीसी ऑनलाइन इला. 3854' के मामले में दिए गए निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें यह निर्धारित किया गया है कि जिला अधिकारी के पास सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के तहत पारित आदेश के पुनरावलोकन की शक्ति नहीं है। उन्होंने तर्क दिया कि आदेश दिनांक 28.06.2025, जो पूर्व आदेश दिनांक 08.05.2025 में दर्ज कब्जे के नोटिस की तिथि को बदलता है, याचिकाकर्ताओं के अधिकारों और हितों पर व्यापक प्रभाव डालता है, और इसलिए, यह आदेश के पुनरावलोकन के समान है।

13. दिनांक 08.05.2025 के आदेश के प्रारंभिक पैराग्राफ में जिला अधिकारी ने अंकित किया है कि एच.डी.एफ.सी. बैंक लिमिटेड ने 15.07.2024 को याचिकाकर्ताओं को सरफेसी अधिनियम की धारा 13(2) के तहत मांग नोटिस भेजा था। नोटिस की अवधि समाप्त होने के बाद दिनांक 14.11.2024 को कब्जे का नोटिस भेजा गया था। इसकी सूचना एक दैनिक समाचार पत्र में भी प्रकाशित की गई थी, लेकिन ऋणधारक ने बैंक को देय राशि का भुगतान नहीं किया और संपत्ति का कब्जा भी नहीं सौंपा। हालाँकि, आदेश में दूसरे स्थान पर यह उल्लेख किया गया है कि सरफेसी अधिनियम की धारा 13(2) के तहत मांग नोटिस 15.07.2024 को जारी किया गया था और धारा 13(4) के तहत कब्जे का नोटिस 13.09.2024 को जारी किया गया था।

14. प्रतिवादी बैंक ने उपरोक्त लेखन संबंधी त्रुटि के सुधार हेतु एक आवेदन दायर किया। जिला अधिकारी ने त्रुटि सुधार के आवेदन को यह कहते हुए स्वीकार कर लिया कि न्याय के हित में लेखन संबंधी त्रुटि का सुधार आवश्यक है।

15. सरफेसी अधिनियम की धारा 13(4) के तहत कब्जे के नोटिस की तिथि के संबंध में लेखन संबंधी त्रुटि का सुधार करना पुनरावलोकन नहीं है, विशेष रूप से तब, जब दिनांक 08.05.2025 के आदेश में ही दूसरे स्थान पर धारा 13(4) के तहत कब्जे के नोटिस की सही तिथि 14.11.2024 उल्लिखित थी। धारा 13(4) के तहत कब्जे के नोटिस की तिथि में सुधार को धारा 14 के तहत पारित आदेश का पुनरावलोकन नहीं कहा जा सकता। किसी भी कानून में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के तहत पारित आदेशों में लेखन संबंधी त्रुटियों के सुधार हेतु शक्तियों के प्रयोग को रोकता हो, और सुधार के संबंध में दिए गए आदेश को क्षेत्राधिकार विहीन नहीं कहा जा सकता।

16. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने 'कोटक महिंद्रा बैंक लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त)' के मामले में दिए गए निर्णय का पूरा पाठ पढ़े बिना, केवल एक वाक्य का अंश न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया है, जो कहता है कि "जिला अधिकारी के पास अपने आदेश का पुनरावलोकन करने का बिल्कुल भी अधिकार नहीं है"। उस मामले में, मैसर्स चोपड़ा फैब्रिकेटर्स एंड मैन्युफैक्चरर्स प्राइवेट लिमिटेड ने भारतीय स्टेट बैंक से ऋण लिया था और उसके पुनर्भुगतान में चूक की थी। भारतीय स्टेट बैंक ने वसूली की कार्यवाही शुरू की, जिसे ऋण वसूली न्यायाधिकरण इलाहाबाद ने दिनांक 12.05.2006 के आदेश द्वारा बैंक के पक्ष में तय किया। उक्त आदेश के विरुद्ध ऋणधारकों द्वारा दायर अपील भी खारिज कर दी गई थी। भारतीय स्टेट बैंक ने इस ऋण को कोटक महिंद्रा बैंक लिमिटेड को हस्तांतरित कर दिया, जिसने अधिनियम, 2002 के तहत वसूली की कार्यवाही शुरू की। इस बीच, ऋणधारकों ने प्रतिभूत संपत्ति पर 'फ्री-होल्ड' अधिकार प्राप्त करने के बाद, संपत्ति का कुछ हिस्सा निजी व्यक्तियों को हस्तांतरित कर दिया। कोटक महिंद्रा बैंक लिमिटेड ने जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष धारा 14 के तहत एक आवेदन दायर किया, जिसे दिनांक 24.06.2013 के आदेश द्वारा स्वीकार कर लिया गया और बैंक ने 30.12.2013 को संपत्ति का कब्जा ले लिया। कब्जा लेने के बाद, 11.01.2014 को विभिन्न समाचार पत्रों में प्रतिभूत संपत्तियों की नीलामी-बिक्री का नोटिस प्रकाशित किया गया।



ऋणधारक और गारंटर ने 30.01.2014 को ऋण वसूली न्यायाधिकरण, इलाहाबाद के समक्ष प्रतिभूतिकरण आवेदन संख्या 218/2013 दायर किया। इस आवेदन को न्यायाधिकरण ने 30.01.2014 को यह दर्ज करते हुए खारिज कर दिया कि ऋणधारक सही तरीके से न्यायाधिकरण के पास नहीं आए थे और उन्होंने बंधक रखी गई संपत्ति को धोखाधड़ी से बेच दिया था। न्यायाधिकरण के आदेश को ऋण वसूली अपीलीय न्यायाधिकरण के समक्ष चुनौती देने के बजाय, ऋणधारक ने जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष एक रिकॉल आवेदन दायर कर दिया। जिला अधिकारी ने पक्षकारों के तर्कों का पुनः मूल्यांकन किया और दिनांक 30.06.2016 के आदेश के माध्यम से अपने पुराने आदेश दिनांक 24.06.2013 को वापस ले लिया। जिला मजिस्ट्रेट के इस आदेश का लाभ उठाते हुए, ऋणधारक ने प्रतिभूत संपत्ति पर बैंक द्वारा लगाए गए तालों को जबरन तोड़ दिया। उपरोक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में ही इस न्यायालय ने यह निर्धारित किया था कि: -

“13. मामला चाहे जो भी हो, हमारी सुविचारित राय है कि जिला मजिस्ट्रेट के पास अधिनियम, 2002 के तहत पारित अपने आदेश दिनांक 24.06.2013 का पुनरावलोकन करने का बिल्कुल भी अधिकार नहीं है, विशेषकर तब जब उस आदेश को ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष चुनौती दी गई थी और ऐसे आवेदन को एक सकारण आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था, जिसमें यह माना गया था कि ऋणधारक साफ हाथों से न्यायाधिकरण के पास नहीं आया था। यदि वे संतुष्ट नहीं थे, तो उनके पास अधिनियम, 2002 की धारा 18 के तहत अपीलीय न्यायाधिकरण में जाने का उपचार उपलब्ध था।”

17. यह निर्णय मामले के पूर्वोक्त विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए पारित किया गया था और यह विधि का ऐसा कोई सिद्धांत प्रतिपादित नहीं करता है कि जिला अधिकारी के पास सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के तहत पारित अपने आदेश में किसी लेखन संबंधी त्रुटि को सुधारने की शक्ति नहीं है।

18. पी. एस. साथप्पन बनाम आंध्र बैंक लिमिटेड: (2004) 11 एससीसी 672' में माननीय उच्चतम न्यायालय की पांच माननीय न्यायाधीशों वाली संविधान पीठ ने यह निर्धारित किया कि: -

“145. कोई भी निर्णय उसके द्वारा निर्धारित विधि के प्रश्नों के लिए एक प्राधिकार होता है। इसके सार को लागू करते समय, न्यायालय को निर्णय से किसी शब्द या वाक्य को उस संदर्भ से अलग करके नहीं चुनना चाहिए जिसमें उक्त प्रश्न विचारार्थ उत्पन्न हुआ था। जैसा कि

सर्वविदित है, एक निर्णय को उसकी पूर्णता में पढ़ा जाना चाहिए और उसमें की गई टिप्पणियों पर उन प्रश्नों के आलोक में विचार किया जाना चाहिए जो उसके समक्ष उठाए गए थे। [देखें हरियाणा फाइनेंशियल कॉर्पोरेशन बनाम जगदम्बा ऑयल मिल्स (2002) 3 एससीसी 496, भारत संघ बनाम धनवंती देवी (1996) 6 एससीसी 44, नलिनी महाजन (डॉ.) बनाम आयकर निदेशक (जांच) (2002) 257 आईटीआर 123 (दिल्ली), उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सिंथेटिक्स एंड केमिकल्स लिमिटेड (1991) 4 एससीसी 139, ए-वन ग्रेनाइट्स बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (2001) 3 एससीसी 537 और भावनगर यूनिवर्सिटी बनाम पालिताना शुगर मिल (पी) लिमिटेड (2003) 2 एससीसी 111।]

146. यद्यपि इस बिंदु पर निर्णयों की भरमार है, फिर भी हम 'गुजरात राज्य बनाम अखिल गुजरात प्रवासी वी.एस. महामंडल (2004) 5 एससीसी 155' के हालिया निर्णय का उल्लेख कर सकते हैं जिसमें इस न्यायालय ने व्यवस्था दी थी:

‘यह एक सामान्य सिद्धांत है कि किसी निर्णय में तर्क के दौरान की गई किसी भी टिप्पणी को उस संदर्भ से अलग करके नहीं पढ़ा जाना चाहिए जिसमें उसका उपयोग किया गया था।’

(विशेष बल दिया गया)

19. अतः, 'कोटक महिंद्रा बैंक लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (उपरोक्त)' के मामले में दिए गए निर्णय का सिद्धांत वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होगा।

20. 'बालकृष्ण रामा तरले बनाम फीनिक्स एआरसी (पी) लिमिटेड (उपरोक्त)' में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि: -

“18. इस प्रकार, सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के तहत मुख्य महानगर अधिकारी / जिला अधिकारी द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियाँ प्रशासकीय कदम हैं। धारा 14 में प्रतिभूत लेनदार द्वारा प्रतिभूत आस्तियों का कब्जा लेने के विरुद्ध ऋणधारकों द्वारा उठाए गए बिंदुओं पर किसी भी प्रकार की न्यायिक निर्णय प्रक्रिया शामिल नहीं है। इस दृष्टिकोण से, एक बार जब प्रतिभूत लेनदार द्वारा सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के तहत सभी आवश्यकताओं का अनुपालन/संतुष्टि कर दी जाती है, तो यह सीएमएम/डीएम का कर्तव्य है कि वह प्रतिभूत लेनदार को कब्जा प्राप्त करने के साथ-साथ प्रतिभूत आस्तियों से संबंधित दस्तावेज प्राप्त करने में अपने अधीनस्थ किसी अधिकारी और/या अधिवक्ता आयुक्त के रूप में नियुक्त किसी अधिवक्ता की सहायता से मदद करे। उस स्तर पर, सीएमएम/डीएम के लिए ऋणधारक और प्रतिभूत लेनदार के बीच और/या किसी

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



अन्य तीसरे पक्ष और प्रतिभूत लेनदार के बीच प्रतिभूत आस्तियों के संबंध में विवाद का न्यायिक निर्णय करना आवश्यक नहीं है; और व्यथित पक्ष को ऋण वसूली न्यायाधिकरण के समक्ष सरफेसी अधिनियम की धारा 17 के तहत कार्यवाही में आपत्तियां उठाने के लिए निर्देशित किया जाना चाहिए।”

21. चूंकि अधिनियम की धारा 14 के तहत आदेश प्रशासकीय प्रकृति की शक्तियों के प्रयोग में पारित किया जाता है और दिनांक 28.06.2025 का आदेश जिला अधिकारी द्वारा न्यायिक शक्तियों के प्रयोग में पारित नहीं किया गया है, इसलिए जिला अधिकारी के पास निश्चित रूप से प्रशासकीय शक्तियों के प्रयोग में पारित आदेश में प्रशासकीय और लेखन संबंधी त्रुटियों को सुधारने की शक्ति है। ऐसी त्रुटि के सुधार को दिनांक 08.05.2025 के आदेश का पुनरावलोकन नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह आदेश के मूल तत्व को नहीं बदलता है। इसलिए, जिला अधिकारी द्वारा पारित दिनांक 28.06.2025 के आदेश को क्षेत्राधिकार के बिना पारित नहीं कहा जा सकता।

22. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया है कि कब्जे के नोटिस की तिथि को 13.09.2024 से बदलकर 14.11.2024 करना याचिकाकर्ता के अधिकारों को पर्याप्त रूप से प्रभावित करता है और यह नहीं कहा जा सकता कि यह सुधार दिनांक 08.05.2025 के आदेश को मौलिक रूप से नहीं बदलता है। इस तर्क में भी कोई बल नहीं है, क्योंकि किसी आदेश में कब्जे के नोटिस की तिथि के संबंध में मात्र एक लेखन त्रुटि का सुधार करना—विशेष रूप से तब जब उसी आदेश के पूर्व भाग में दिए गए तथ्यात्मक विवरण में यह तिथि सही ढंग से अंकित हो—दिनांक 08.05.2025 के आदेश में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं करता है और न ही यह आदेश के पुनरावलोकन की श्रेणी में आता है। यह सुधार याचिकाकर्ता के किसी भी मूल्यवान विधिक अधिकार को प्रभावित नहीं करता है। यदि यह मान भी लिया जाए कि सुधार याचिकाकर्ता के अधिकारों को प्रभावित करता है, चूंकि यह सुधार दिनांक 08.05.2025 के आदेश को मौलिक रूप से नहीं बदलता है, इसलिए याचिकाकर्ता पर इसका केवल प्रभाव ही आदेश की प्रकृति का निर्णायक नहीं होगा कि सुधार के आदेश को पुनरावलोकन का आदेश मान लिया जाए।

23. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि ऋण वसूली न्यायाधिकरण द्वारा दिनांक 10.11.2025 को पारित आक्षेपित आदेश, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता की दिनांक

28.06.2025 के आदेश को दी गई चुनौती को खारिज किया गया है, मैं कोई कारण नहीं बताया गया है और इसलिए, इसे प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन में पारित किया गया है।

24. 'एस.एन. मुखर्जी बनाम भारत संघ: (1990) 4 एससीसी 594' में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि: -

“39. प्राकृतिक न्याय के नियमों का अंतर्निहित उद्देश्य “न्याय की विफलता को रोकना” और “कार्रवाई में निष्पक्षता” सुनिश्चित करना है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, अर्ध-न्यायिक कार्यों का निर्वहन करने वाले प्रशासनिक अधिकारी द्वारा अपने निर्णय के लिए कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता, मनमानेपन की संभावनाओं को समाप्त करके और निर्णय लेने की प्रक्रिया में निष्पक्षता सुनिश्चित करके इस उद्देश्य को प्राप्त करती है। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विस्तारित होते क्षितिज को ध्यान में रखते हुए, हमारी यह राय है कि कारणों को दर्ज करने की अनिवार्यता को प्राकृतिक न्याय के उन सिद्धांतों में से एक माना जा सकता है जो प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा शक्ति के प्रयोग को नियंत्रित करते हैं। प्राकृतिक न्याय के नियम कोई संहिताबद्ध नियम नहीं हैं। उनके लागू होने की सीमा उस विशेष वैधानिक ढांचे पर निर्भर करती है जिसके तहत प्रशासनिक प्राधिकारी को क्षेत्राधिकार प्रदान किया गया है। किसी प्रशासनिक प्राधिकारी द्वारा न्यायिक या अर्ध-न्यायिक कार्यों सहित किसी विशेष शक्ति के प्रयोग के संबंध में, विधायिका उक्त शक्ति प्रदान करते समय यह महसूस कर सकती है कि व्यापक जनहित में यह उचित नहीं होगा कि प्रशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के कारणों को आदेश में दर्ज किया जाए और पीड़ित पक्ष को सूचित किया जाए, और वह ऐसी आवश्यकता से छूट दे सकती है। वह ऐसा करने के लिए स्पष्ट प्रावधान बना सकती है जैसे कि संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रशासनिक प्रक्रिया अधिनियम, 1946 और ऑस्ट्रेलिया के प्रशासनिक निर्णय (न्यायिक पुनरावलोकन) अधिनियम, 1977 में निहित हैं, जिसके द्वारा कुछ निर्दिष्ट अधिकारियों द्वारा पारित आदेशों को अधिनियम के दायरे से बाहर रखा गया है। ऐसा बहिष्करण विषय-वस्तु की प्रकृति, योजना और अधिनियम के प्रावधानों से आवश्यक निहितार्थ द्वारा भी उत्पन्न हो सकता है। ऐसे प्रावधान के अंतर्निहित जनहित का महत्व, कारणों को दर्ज करने की आवश्यकता द्वारा पूरी होने वाली हितकारी भूमिका से अधिक होगा। अतः, ऐसे मामले में उक्त आवश्यकता पर जोर नहीं दिया जा सकता है।

40. पूर्वोक्त कारणों से, यह निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि उन मामलों को छोड़कर जहाँ स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा इस आवश्यकता से छूट दी गई है, न्यायिक या अर्ध-

न्यायिक कार्यों का प्रयोग करने वाले प्रशासनिक प्राधिकारी के लिए अपने निर्णय के कारणों को दर्ज करना अनिवार्य है।”

25. 'क्रांति एसोसिएट्स (पी) लिमिटेड बनाम मसूद अहमद खान (उपरोक्त)' के मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस बिंदु पर विभिन्न मिसालों का परीक्षण किया और कानून का सार इस प्रकार प्रस्तुत किया:

47. उपरोक्त चर्चा का सारांश प्रस्तुत करते हुए, यह न्यायालय निर्धारित करता है:

(क) भारत में न्यायिक रुझान हमेशा कारणों को दर्ज करने का रहा है, यहाँ तक कि प्रशासनिक निर्णयों में भी, यदि ऐसे निर्णय किसी पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हों।

(ख) एक अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी को अपने निष्कर्षों के समर्थन में कारण अवश्य दर्ज करने चाहिए।

(ग) कारणों को दर्ज करने पर जोर न्याय के उस व्यापक सिद्धांत की सेवा के लिए है कि न्याय न केवल किया जाना चाहिए, बल्कि वह होता हुआ दिखना भी चाहिए।

(घ) कारणों को दर्ज करना न्यायिक, अर्ध-न्यायिक या प्रशासनिक शक्ति के किसी भी संभावित मनमाने प्रयोग पर एक वैध अंकुश के रूप में भी कार्य करता है।

(ङ) कारण इस बात का आश्वासन देते हैं कि निर्णय लेने वाले ने प्रासंगिक आधारों पर और बाहरी विचारों की उपेक्षा करते हुए अपने विवेक का प्रयोग किया है।

(च) कारण वस्तुतः निर्णय लेने की प्रक्रिया का उतना ही अनिवार्य घटक बन गए हैं, जितना कि न्यायिक, अर्ध-न्यायिक और यहाँ तक कि प्रशासनिक निकायों द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करना।

(छ) कारण उच्च न्यायालयों द्वारा न्यायिक समीक्षा की प्रक्रिया को सुगम बनाते हैं।

(ज) कानून के शासन और संवैधानिक शासन के प्रति प्रतिबद्ध सभी देशों में चल रहा न्यायिक रुझान प्रासंगिक तथ्यों पर आधारित सकारण निर्णयों के पक्ष में है। यह वस्तुतः न्यायिक निर्णय लेने की प्रक्रिया का प्राणतत्व है जो इस सिद्धांत को न्यायसंगत ठहराता है कि 'तर्क ही न्याय की आत्मा है'।

(झ) न्यायिक या यहाँ तक कि अर्ध-न्यायिक राय इन दिनों उन्हें देने वाले न्यायाधीशों और अधिकारियों के अनुसार भिन्न हो सकती है। ये सभी निर्णय एक सामान्य उद्देश्य की पूर्ति करते

हैं, जो तर्क द्वारा यह प्रदर्शित करना है कि प्रासंगिक कारकों पर निष्पक्ष रूप से विचार किया गया है। न्याय वितरण प्रणाली में वादियों का विश्वास बनाए रखने के लिए यह महत्वपूर्ण है।

(ज) तर्क पर जोर देना न्यायिक जवाबदेही और पारदर्शिता दोनों के लिए एक आवश्यकता है।

(ट) यदि कोई न्यायाधीश या अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी अपनी निर्णय लेने की प्रक्रिया के बारे में स्पष्ट नहीं है, तो यह जानना असंभव है कि निर्णय लेने वाला व्यक्ति पूर्व-निर्णय के सिद्धांत या वृद्धिशीलवाद के सिद्धांतों के प्रति निष्ठावान है या नहीं।

(ठ) निर्णयों के समर्थन में कारण ठोस, स्पष्ट और संक्षिप्त होने चाहिए। कारणों का ढोंग या "रबर-स्टैम्प कारण" को वैध निर्णय प्रक्रिया के बराबर नहीं माना जा सकता।

(ड) इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि पारदर्शिता, न्यायिक शक्तियों के दुरुपयोग पर अंकुश लगाने की अनिवार्य शर्त है। निर्णय लेने में पारदर्शिता न केवल न्यायाधीशों और निर्णय लेने वालों को त्रुटियों के प्रति कम प्रवृत्त बनाती है, बल्कि उन्हें व्यापक जांच के दायरे में भी लाती है।

(ढ) चूंकि कारण दर्ज करने की आवश्यकता निर्णय लेने में निष्पक्षता के व्यापक सिद्धांत से उत्पन्न होती है, इसलिए उक्त आवश्यकता अब वस्तुतः मानवाधिकारों का एक घटक है। यूरोपियन कन्वेंशन ऑफ ह्यूमन राइट्स के अनुच्छेद 6 का संदर्भ देते हुए यह माना गया कि "न्यायिक निर्णयों के लिए पर्याप्त और समझदार कारण दिए जाने चाहिए"।

(ण) सभी 'कॉमन लॉ' क्षेत्राधिकारों में निर्णय भविष्य के लिए मिसाल स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए, कानून के विकास के लिए, निर्णय के लिए कारण बताने की आवश्यकता अनिवार्य है और वस्तुतः यह "उचित प्रक्रिया" का एक हिस्सा है।

(विशेष बल दिया गया)

26. ऋण वसूली न्यायाधिकरण ने आक्षेपित आदेश में यह अंकित किया है कि दिनांक 26.08.2025 के आदेश में विशेष रूप से यह दर्ज किया गया था कि एक लेखन त्रुटि को सुधारा जा रहा था। मजिस्ट्रेट ने दिनांक 08.05.2025 के पूर्व आदेश को संशोधित, पुनरावलोकित या वापस नहीं लिया है। जिला अधिकारी ने केवल एक लेखन त्रुटि को सुधारा है, जिसे बिना किसी आवेदन के भी किया जा सकता था। ऋण वसूली न्यायाधिकरण द्वारा दिनांक 10.11.2025 को पारित आक्षेपित आदेश में यही कारण बताया गया है, और इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता कि आदेश बिना किसी कारण के पारित किया गया है और न ही इस आधार पर आदेश दोषपूर्ण

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



है। दिनांक 10.11.2025 के आदेश में दिए गए कारण पर्याप्त हैं और उन्हें इस आदेश के पूर्व भाग में पहले ही पुष्ट किया जा चुका है।

27. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह तर्क दिया है कि यद्यपि ऋण वसूली न्यायाधिकरण ने आक्षेपित आदेश में याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत निर्णयों का संदर्भ दिया है, किंतु उन निर्णयों के सिद्धांतों की अनुपयोगिता के संबंध में कोई तर्क नहीं दिया गया है। हालाँकि, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने उन निर्णयों को इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत नहीं किया है। ऋण वसूली न्यायाधिकरण द्वारा दिनांक 10.11.2025 के आदेश में संदर्भित निर्णय 'एसेट रिकंस्ट्रक्शन कंपनी (इंडिया) लिमिटेड बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2018 एससीसी ऑनलाइन इला. 6494' है, जिससे यह न्यायालय उन निर्णयों की प्रासंगिकता का परीक्षण कर सके।

28. अतः, मुझे याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के इन तर्कों में कोई बल नहीं दिखता कि वैधानिक अपीलीय उपचार की उपलब्धता के बावजूद यह याचिका पोषणीय है, क्योंकि जिला अधिकारी द्वारा दिनांक 28.06.2025 का आदेश क्षेत्राधिकार के बिना पारित किया गया था और ऋण वसूली न्यायाधिकरण ने बिना किसी कारण के उस चुनौती को खारिज कर दिया था। हालाँकि, याचिकाकर्ता के उक्त तर्कों के गुणों का परीक्षण करते समय, चूंकि इस न्यायालय ने याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के सभी तर्कों के गुण-दोषों की पहले ही जांच कर ली है, अतः अपीलीय न्यायाधिकरण द्वारा तय करने के लिए अब कुछ शेष नहीं रह जाता है और याचिकाकर्ता को अपील के उपचार हेतु वापस भेजने का कोई लाभ नहीं होगा।

29. तदनुसार, मुझे जिला अधिकारी द्वारा सरफेसी अधिनियम की धारा 14 के तहत पारित आदेश दिनांक 08.05.2025 में लेखन त्रुटि को सुधारने हेतु पारित आदेश दिनांक 28.06.2025 में कोई त्रुटि नहीं मिली है। जिला अधिकारी द्वारा पारित आदेश दिनांक 28.06.2025 में हस्तक्षेप करने से इनकार करने में ऋण वसूली न्यायाधिकरण ने कोई त्रुटि या अवैधता नहीं की है।

30. याचिका गुण-दोष विहीन है और इसे प्रवेश स्तर पर ही खारिज किया जाता है।

(न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी)

16 जनवरी, 2026



राम

Translated version. not for legal use

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है।
सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।